© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 11 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

पाणिनिकालीन नारी

डॉ मोनिका, सहायक आचार्या
मौलिकसिद्धान्तविभाग
डॉ एस.आर.आर. आयुर्वेद विश्वविद्यालय
जोधपुर(राजस्थान)

शोधसारांश-

व्याकरणनय में पाणिनि का योगदान अभूतपूर्व है। पाणिनि प्रदत्त अष्टाध्यायी समकालीन वैज्ञानिक मापदण्डों के अनुरूप ही मानवमस्तिष्क का अभूतपूर्व प्रमाण है। पाणिनि की दृष्टि केवल शास्त्रपरक ही नहीं है अपितु वे मानवजीवन के प्रत्येक स्तर को स्पर्श करते हैं। स्त्रीविमर्श समकालीन समाज में सर्वाधिक चर्चित विषय है और प्रायः भारतीय सामाजिकव्यवस्था पर आक्षेप प्राप्त होता है कि भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही नारी को दोयमदर्जे का माना गया है और इस विषय पर भिन्न-भिन्न मत मतान्तर प्राप्त होते हैं।यद्यपि अष्टाध्यायी घोरशास्त्रीय परम्परा का ग्रन्थ है तथापि पाणिनीय सूत्रों में स्त्रियों के सम्मान को दर्शाने वाले अनेक संकेत प्राप्त होते हैं जिससे ज्ञात होता है कि पाणिनि काल में नारी आराधनीया और सम्मानभाजिका थी।

वेद विश्वसंस्कृति का मूल है। यह सम्पूर्ण विश्व वेद से ही सिद्ध है। इस संसार के समस्त गोचर और और अगोचरविषयों का अधिगम वेद है। यह अगाध ज्ञानसंग्रह अवगाहन करने वालों को अतुल्यरत्नों से अभिषिक्त करता है परन्तु इस ज्ञानराशी का अवगाहन अत्यन्त दुरुह है अतः वेदों में निगूढतत्त्वाबोध के लिये वेद को अंगी के रूप में कल्पित करते हुए इसके छः अंगों की कल्पना प्रस्तुत की गयी-

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्सामंगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।[1]

अर्थात् वेदरूपी पुरुष के चरण छन्द, कल्प हाथ, ज्योतिष नेत्र, निरुक्त श्रोत्र, शिक्षा घ्राण तथा मुख व्याकरण कहा गया है। इन सभी के अध्ययन से ही मनुष्य वेदार्णव के अवगाहन में सक्षम होता है। इन सभी अंगों में मुखभूतकल्पित होने के कारण व्याकरण वेदांगों में मुख्य कहा गया है। महावैयाकरण भर्तृहरि ने इस मुख्यता को अत्यन्त उदात्तस्वरूप में स्पष्ट किया है- **आसन्नं ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः। प्रथमं छन्दसामंगं प्राहुर्व्याकरणं बुधाः।**[2]

भारतीयवाङ्मयपरम्परा के अनुसार व्याकरण के आदि अध्येता इन्द्र है और इन्द्रदेव ने व्याकरण का शास्त्रीयस्वरूप प्रस्तुत किया अतः इन्द्र को प्रथम वैयाकरण होने का गौरव प्राप्त है।[3] इन्द्र के पश्चात् अनेक वैयाकरणों का उल्लेख व्याकरणशास्त्र के ऐतिहासिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

अनेक जनश्रुतियों में वैयाकरणशास्त्र के आगमभूत स्वरूप में शिव वन्द्य हैं औश्र माना जाता है कि महावैयाकरण पाणिनि ने शिव की आराधना की- भगवान् शिव के प्रसाद के रूप में गृहीत व्याकरण के ज्ञान को पणिन के पुत्र पाणिनि ने इस रूप में भूतल पर प्रसारित किया कि व्याकरण पाणिनि के नाम से ही प्रतिष्ठित हो गया। पाणिनि ने व्याकरण के ज्ञान को अष्टाध्यायी के रूप में ज्ञानार्जन के रूप में प्रदान किया । यद्यपि अष्टाध्यायी वेदज्ञान के साधनभूत के रूप में प्रमुख वेदांग है और इस ग्रन्थ में नानाविधशब्दों का अनुशासन किया गया है तथापि शब्द की लोककारकता सर्वग्राह्य है क्योंकि शब्द के अभाव में लोकव्यवहार ही सम्भव नहीं है-

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत् भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्व्यं ज्योतिरासंसारं न दीप्येत्।।[4]

इसीलिये अष्टाध्यायी के अध्ययन के साथ-साथ हमें तात्कालिक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक,सांस्कृतिक अध्ययन के अवसर भी संकेतितरूप में प्राप्त होते हैं।

अन्तः एवं बाह्यसाक्ष्यों के आधार पर पाणिनि का काल ईसा से पांचवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। वह यह काल था जब भारत पर हूण, कुषाणों आदि बाहरी जातियों के आक्रमण हो रहें थे, इसके परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति के साथ- साथ विदेशियों के सम्पर्क के कारण सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था में भी आंशिक परिवर्तन प्रारम्भ हो गयें थे। उक्तविवरण पाणिनी के सूत्रों में गवेषित किये गये और इतिहासकारों को उससे बहुत सहायता भी प्राप्त हुई है।

वर्तमानसमय में जो सामाजिक परिदृश्य प्राप्त होता है उसमें भारतीयसमाज में महिलाओं की स्थिति को लेकर समय-समय पर वैचारिक मन्थन होता है तथा निष्कर्षतः यह स्वरूप सामने आता है कि भारतीयसंस्कृति में सदैव से ही महिलाओं की स्थिति दयनीय रही है तथा उन्हें राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक रूप से कभी भी उन्नति का अवसर नहीं दिया गया। वे निरक्षर, शोषित और सदैव पुरुषों से हीन मानी गयी है। भारतीयसंस्कृति की परिपाटियों के कारण ही भारतीयसमाज में महिलाओं की दुर्दशा प्राप्त होती है। परन्तु संस्कृति के संवाहकशासत्रों का यदि सूक्ष्मता और विचारपूर्वक अध्ययन किया जाये ंतो ज्ञात होगा कि भारतीय संस्कृति सहास्तित्व के सिद्धान्त का प्रवर्तन और पोषण करती है तथा यह विचार जीवन के प्रत्येक स्तर पर प्रभावी है। सहास्तित्व की इसी एषणा को मैनें महावैयाकरण पाणिनि के दृष्टिकोण से अन्वेषित करने का प्रयास किया है और अपने अध्ययन के अनन्तर मुझे ऐसे अनेक उद्धरण प्राप्त हुए जो स्त्रीविमर्श को रेखाकिंत करते हैं।

प्रायः भारतीयसंस्कृति पर आक्षेप लगता है कि भारतीय स्त्रीशिक्षा को लेकर अनुदार थे इसी कारण स्त्रियां निरक्षर और अशिक्षितजीवन व्यतीत करती थी। अध्ययन का अधिकार केवल पुरुषों को था। अष्टाध्ययी का अध्ययन करने पर यह तथ्य अत्यन्त भ्रामक प्रतीत होता है क्योंकि अष्टाध्यायी में ऐसे अनेक सूत्र प्राप्त होते हैं जो स्त्रीशिक्षा की उच्चस्थिति को इंगित करते हैं। स्त्रियां वैदिक मनत्रों का अध्ययन करती थी क्योंकि जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्[5] सूत्रे जिन पदों की सिद्धि की अपेक्षा से प्रस्तुत किया गया उससे कठी, कलापी, बह्वृची इत्यादि पद प्राप्त होतें हैं तथा इनके अर्थ हैं क्रमशः कठशाख का अध्ययन करने वाली स्त्री, कलापशाखा का अध्ययन करने वाली स्त्री, बहुत सारी ऋचाओं का अध्ययन करने वाली स्त्री इत्यादि। स्प्ष्ट है कि पाणिनिकाल में स्त्रियां भी वेदों की भिन्नशाखाओं का अध्ययन करती थी और जिस प्रकार पुरुष अपनी-अपनी शाखाओं से जाने जाते थे स्त्रियों का प्रत्याख्यान भी उसी प्रकार होता था। स्त्रियां केवल अध्ययन ही नहीं करती थी अपितु वे अध्यापनकार्य भी सम्पन्न करवा कर आचार्यापद पर प्रतिष्ठित होती थी।[6]

स्त्रियों द्वारा ग्रन्थों की व्याख्या करने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[7] इसी प्रकार वर्णादनुदात्तात् तोपधात्तो नः[8] पर पठित वार्तिक के अनुसार असिक्नी और पलिक्नी दो आचार्या के नाम अन्वेषित किये गये हैं।

यदि स्त्री के यज्ञीयविधानों की चर्चा की जायें तो उपर्युक्त उल्लेख से यह तो सुस्पष्ट है कि स्त्रियां वैदिकशिक्षा अर्जित करती थी तो उनो उपयोग भी अवश्य करती होंगी इसी सन्दर्भ में पूतक्रतोरै च[9] यह सूत्र उल्लेखनीय है क्योंकि इस सूत्र की सिद्धि क्रमशः पूतक्रतायी और पदरचना के लिये की गयी है और इसका अर्थ है यज्ञ करने से पवित्र पति की स्त्री और यह स्पष्ट है कि बिना पत्नी के पति यज्ञसम्पादन करने का अधिकारी नहीं था इसी सन्दर्भ में पत्युर्नो यज्ञसंयोगे[10] सूत्र भी स्त्री के यज्ञप्रक्रिया में भाग लेने का श्रेष्ठप्रमाण है। ऊङुतः[11] सूत्र से उद्दिष्ट अध्वर्युः पद स्त्रियों के यज्ञप्रक्रिया में सम्मिलित न होने की सभी धारणाओं का निर्मूलन करने में संसिद्ध है।

स्त्रियों की पारिवारिकस्थिति के अनुमान में मातरपितरावुदीच्याम्[12] सूत्र में माता पद का पूर्वप्रयोग परिवार में माता के अपूर्व सम्मान को इंगित करता है। स्त्रीपुंवच्च[13] आदि सूत्र पाणिनिकाल में स्त्रियों के प्रति सम्मान को इंगित करतें हैं।[14] स्त्रियां सभा आदि में भी भाग लेती थी[15] स्त्रीसभम् पद का प्रयोग इसका प्रमाण है।समाज में जिस प्रकार पुरुष के गुण स्त्री का अभिधान बनते थे उसी प्रकार स्वगुणों के कारण प्रतिष्ठतस्त्री भी अपने पति का अभिधान मानी जाती थी, इस दृष्टि से न कोपधायाः[16], संज्ञापूरण्योश्च[17], वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे[18] इत्यादि सूत्रों पर प्राप्त विश्लेषण और उदाहरण प्रमाणभूत हैं। इसी प्रकार दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः[19], अवृद्धाभ्यो

नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः[20], मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः[21], स्त्रीभ्यो ढक्[22], रेवत्यादिभ्यष्ठक्[23] इत्यादि अनेक उदाहरण हैं जो माता के नाम के आधार पर पुत्र के नामकरण का विधान करतें हैं और ऐसा वर्तमान में भी नहीं देखने को मिलता है। वर्तमान में संतति केवल पिता के ही नाम से जानी जाती है और प्रमाणपत्रों में माता के नाम का पृथक् से उल्लेख होता है। मातृशक्ति के सम्मान का इससे अच्छा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। घर पति और पत्नी दोनो का था दोनों ही समान भग से उसका उपभोग करते थे क्योंकि गृहस्वामी अर्थ में दम्पतिपद का प्रयोग स्त्री और पुरुष दोनों के लिये प्रयुक्त हुआ है।[24] सम्बन्धियों के नामकरण में भी सह अस्तित्व का बोध पाणिनीयसूत्रों से ज्ञात होता है।[25] समाज में व्यभिचार व्याप्त थे। कुमारावस्था में उत्पन्न पुत्र कानीन कहलाता था[26] कुलटा का पुत्र कौलटेरः[27] तथा दासी का पुत्र दासेरः[28] कहलाता था। स्पष्ट है कि व्यभिचार व्याप्त होने पर भी समाज में ऐसी सन्तान को मान्यता प्रापत थी। कुमारश्रमणादिभिः[29] सूत्र से ज्ञात होता है कि स्त्रियां सन्यास भी धारण करती थी । इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय के सम्पादन में सहभगित्व, संयोजन और संपूरकत्व में स्त्री ही आधारभूमि के समान महत्वपूर्ण मानी गई और इसकी पुष्टि पाणिनि द्वारा स्त्रीप्रत्ययों का प्रणयन है। सभी पुल्लिंगशब्दों का स्त्रीलिंग में रूपान्तरण सम्भव है फिर चाहे वह पुरुषवाचकपद उसकी राजनीतिक, सामरिक, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक किसी भी महत्ता या विशेषता को बतलायें, उसका स्त्रीलिंग पद विद्यमान है, तात्पर्य यह है कि पाणिनिकालीन स्त्रियां उन सभी अधिकारों का उपभेग करती थी जो पुरुषों के लिये नियत थे। अर्थात् उस काल में स्त्रीपुरुषों के मध्य कोई परस्पर संघर्ष या प्रतिस्पर्धा हो ऐसा चित्रण नही मिलता अपितु स्त्री और पुरुष परस्पर सहयोगी हैं, वैसी उदात्तभावना का परिचय प्राप्त होता है।

* * *

सन्दर्भ -

1. पाणिनीयशिक्षा-
2. वाक्यपदीयम् ,1/11
3. वाग्वै पराच्यव्याकृताऽवदत्। ते देवा इन्द्रमबुरवन् इमां नो व्याकुर्विति..... तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्।-तैतिरीयसंहिता,6/4/7
4. काव्यादर्श 1/3
5. पाणिनि अष्टाध्यायी, 4/1/63

6. अष्टाध्यायी, 4/1/63 पर पठित वार्तिक या तु स्वयंमेव अ
7. अष्टाध्यायी, 7/3/45 पर पठित वार्तिक वर्णका तान्तवे के अनुसार ग्रन्थ की व्याख्या करने वाली स्त्री वर्णिका
8. अष्टाध्यायी, 4/1/39 पर पठित वार्तिक-छन्दसि क्रमेके
9. अष्टाध्यायी, 4/1/36
10. अष्टाध्यायी, 4/1/33
11. अष्टाध्यायी, 4/1/66
12. अष्टाध्यायी, 6/3/22
13. अष्टाध्यायी, 1/2/66
14. अष्टाध्यायी, 2/2/34 पर वार्तिक अभ्यर्हितंच
15. अष्टाध्यायी, 2/4/24
16. अष्टाध्यायी, 6/3/37
17. अष्टाध्यायी, 6/3/38
18. अष्टाध्यायी, 6/3/39
19. अष्टाध्यायी, 4/1/84
20. अष्टाध्यायी, 4/1/113
21. अष्टाध्यायी, 4/1/115
22. अष्टाध्यायी, 4/1/120
23. अष्टाध्यायी, 4/1/146
24. राजदन्तादिषु परम् अष्टाध्यायी, 4/1/146
25. पितृष्वसुश्छण, वही 4/1/113 तथा मातृष्वसुश्च, वही 4/1/134
26. कन्यायाः कनीन च ,वही, 4/1/116
27. कुलटाया वा, वही, 4/1/127
28. क्षुद्राभ्यो वा, वही, 4/1/137
29. वही

* * *